LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 14: गुणत्रयविभागयोग

2/3 (श्लोक 8-13), शनिवार, 09 नवंबर 2024

विवेचक: गीता प्रवीण कविता जी वर्मा

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/TMvJEzEN3nM

गुणों की पहचान द्वारा स्वयं का कल्याण

सनातन धर्म विधि का पालन करते हुए आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ मङ्गलाचरण, भक्त हनुमान के स्तुति गान हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन एवं गुरु परम्परा के वन्दन के साथ हुआ।

गोपाष्टमी के शुभ दिवस की सभी को हार्दिक शुभकामनाएँ।

गुणत्रयविभागयोग में श्रीभगवान ने तीन गुण - सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक के विभाग को विस्तार से समझाया है। इन तीनों गुणों का समस्त मानव जाति पर इतना प्रबल प्रभाव है कि हमारा चरित्र निर्माण इन्हीं गुणों पर आश्रित है। इन गुणों की प्रधानता ही हमारे स्वभाव को दिशा देती है और हमारा कर्म निर्धरित करती है, अतः इन गुणों की सही परख ही मानव जीवन की सफलता की कुञ्जी है।

श्रीमद्भगवद्गीता का परम उद्देश्य है कि मनुष्य इन गुणों की भली-भाँति पहचान कर सके ताकि इनको माध्यम बनाकर स्वयं का निरीक्षण कर सके। इस ज्ञान का उपयोग दूसरों का विश्लेषण करने के लिए कदापि नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि भोजन का विषय लें, तो हमें समझना है कि हम किस प्रकार का भोजन ग्रहण करते हैं तथा उसका हमारे मन और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव है? इसका उपयोग हम इसलिए न करें कि पड़ोस की महिला इस प्रकार का वार्तालाप करती है या इस प्रकार का व्यवहार करती है, इस प्रकार का भोजन ग्रहण करती है, अतः वह राजसिक है अथवा तामसिक है।

गुण शब्द के कई अर्थ हैं, जिनमें एक अर्थ रस्सी भी है। रस्सी का कार्य है बाँधना, अतः शास्त्रकारों ने गुण को भी एक प्रकार का बन्धन माना है। रस्सी तो पदार्थ को बाँधने का कार्य करती है, परन्तु गुण तो सूक्ष्म जीवात्मा को बाँधने का काम करते हैं

देहे देहिनमव्ययम्॥14.5॥

कौन सा गुण किस प्रकार बाँधेगा -

सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ॥14.6॥

किसी सात्त्विक कार्य को करने के पश्चात हमें सुख की प्राप्ति होती है और फिर अधिक सुख की कामना में हम अधिक प्रयास करने लगते हैं। ध्यान रखने की बात तो यह है कि उस सुख की सीमा को जानना है, वह सुख पारमार्थिक नहीं अपितु इसी

संसार से जुड़ा है। परम सत्ता से एकाकार होने पर ही वह सुख परमार्थिक हो पायेगा। साधना के आरम्भिक वर्षो में सांसारिक सुख भी वाञ्छित हैं और साधक के चित्त को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। साधना में आगे बढ़ते हुए हम यह जान पाते हैं कि ऐसे सांसारिक सात्त्विक सुख भी क्षणिक होते हैं अतः त्याज्य हैं और हमें इनसे ऊपर उठना है।

श्रीभगवान ने अट्ठारहवें अध्याय में सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक सुखों की व्याख्या की है और इस चौदहवें अध्याय में गुणों की महत्ता पर प्रकाश डाला है। इन गुणों की तुलना हम तीन विभिन्न पदार्थों से निर्मित चेन से कर सकते हैं।

सात्त्विक गुण अर्थात् सोने की चेन, राजसिक गुण चाँदी की और तामसिक गुण लोहे की चेन। अब चेन किसी भी धातु की बनी हो उसका कार्य तो बाँधना ही है।

सत्त्व प्रधान जीवन आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों पहलुओं में सहायक होता है और सदैव सफलता को प्राप्त करता है। आरम्भ से ही यदि हमने अपनी दिनचर्या सात्त्विक नियमों के आधार पर सुव्यवस्थित कर ली, अर्थात् किस समय निद्रा, किस समय जागरण, किस समय भोजन अथवा सन्ध्या वन्दन? इत्यादि सुनिश्चित कर ली तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता मिलती है।

श्रीभगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से मानव को एक अतुल्य भेंट दी है। अमृत और विष का प्याला रख दिया और यह स्वतन्त्रता भी प्रदान की, कि हम अपने विवेक द्वारा किसका चयन करें? यदि हम सात्त्विक गुणों पर आधारित हैं तो अमृत का भोग कर रहे हैं परन्तु यदि राजसिक या तामसिक गुणों का आलम्बन लेते हैं तो विष ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ एक और तथ्य स्पष्ट कर लें कि राजसिक गुण, सात्त्विक और तामसिक गुणों के मध्य का सेतु हैं। जीवन यात्रा में यदि किसी तामसिक गुणों के अधीन व्यक्ति को अपने उत्थान हेतु दिशा परिवर्तन करनी हो तो पहले राजसिक गुणों से होते हुए ही सात्त्विकता के मार्ग तक पहुँचेंगे।

अपने चरित्र का आँकलन करने के लिए ग्यारह बिन्दु चयनित किये गए हैं। किस स्थान पर हमारी क्या प्रतिक्रिया रहती है उससे हम अपनी मनः स्थिति का परीक्षण कर पाते हैं।

ग्यारह मुख्य बिन्दु की सूची-

1. व्यव्हार

2. वाणी -

सत्यं(म्) प्रियहितं(ञ्) च यत्| 17.15 ||

सत्य बोलें, प्रिय बोलें, हितकारी बोलें - ऐसा करना किसी तामसिक या राजसिक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। इस प्रकार की वाणी तो कोई सन्त ही बोल सकता है अथवा वह व्यक्ति जो सत्त्व गुण को अपने जीवन में अपना रहा हो। अनेकों बार हम सबने ऐसी दुविधा का सामना किया होगा कि हर अवस्था में सत्य किस प्रकार बोलें, ऐसे विचार भी मन में उठते हैं कि सत्य तो कटु होता है, हितकारी नहीं, परन्तु सतोगुणी मनुष्य के मस्तिष्क में प्रगाढ़ विवेक शक्ति जाग्रत होती है जो उसे सही और गलत में भेद करना सिखाती है और ऐसा मनुष्य प्रत्येक अवसर पर सही वाणी और व्यवहार का चयन कर पाता है।

रजोगुणी व्यक्ति अत्यन्त क्रियशील होते हैं और उन्हें यह विश्वास होता है कि वह हर कार्य कर सकते हैं, अतः उनका वाणी पर संयम कम होता है। हम सबने यह भी अनेकों बार अनुभव किया होगा कि हम जब अत्यधिक बात करते हैं तो कई बार जो न बोलना हो वह भी बोल जाते हैं क्योंकि इन्द्रियाँ अत्यन्त क्रियाशील होती हैं। राजसिक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं, अतः अनेक अवसर पर जिह्वा पर नियन्त्रण नहीं रख पाते और जो नहीं बोलना होता वह भी बोल जाते हैं।

यह अनमोल ज्ञान प्राप्त कर, अब हम सबको अपनी वाणी और व्यवहार का भी विश्लेषण करना चाहिए। यदि हमें ज्ञात हो कि हम भी राजसिक वाणी का उपयोग करते हैं तो कुछ सात्त्विकता लाने की आवश्यकता है, या मौन धारण करें। कम बोलें और अधिक सुनें। गीता परिवार के सम्मानीय आशु भैया संवाद (communication) के विषय पर कार्यशाला (workshop) करते हैं तो सदैव इस बात पर बल देते हैं कि पच्चीस प्रतिशत बोलें और पिचहत्तर प्रतिशत सुनें। वह यह भी समझाते हैं कि एक ही

वाक्य में बहुत कुछ बोल जाएँ, मानों गागर में सागर भर लें। अच्छे वक्ता की यही पहचान है।

तामसिक व्यक्ति में अत्यन्त मूढ़ता और प्रमाद होता है। उसे यह ज्ञान ही नहीं कि क्या बोलना उचित रहेगा और क्या अनुचित? ऐसे व्यक्ति कई बार ऐसी बातें बोल जाते हैं जिसकी समीक्षा भी नहीं हो सकती। अत्यधिक क्रोध में बोले गए कथन प्रायः तामसिक की श्रेणी में आते हैं।

श्रीभगवान ने स्वयं दूसरे अध्याय में कहा-

क्रोधाद्भवति सम्मोहः(स्), सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥

क्रोध से बुद्धि का विनाश होता है और हमारी स्मृति भ्रमित हो जाती है, अतः क्या उचित है, क्या अनुचित है का भेद नहीं कर पाते। यदि हम किसी अवसर पर क्रोधित हो जाएँ तो यह भान अवश्य रखें कि मौन धारण कर लें क्योंकि उस अवस्था में वाणी पर अङ्कुश नहीं रहता और वह चञ्चल मन के अधीन अनियन्त्रित होकर बहुत कुछ अवाञ्छनीय बोल जाती है, जिस पर हमें लम्बे समय तक ग्लानि हो सकती है।

3. भोजन - भोजन के विषय में सत्रहवें अध्याय में श्रीभगवान ने सात्त्विक भोजन के गुणों की व्याख्या करते हुए कहा कि जो भोजन आयु, सत्त्व, बल, सुख और प्रीति का वर्धन करे, वह सात्त्विक कहलाता है।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः,
स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः।।8।।

राजसिक भोजन की व्याख्या में श्रीभगवान ने कहा - अति कटु, अति अम्ल, अति तीक्ष्ण भोजन का भक्षण नहीं करना चाहिए। उपयुक्त मात्रा में प्रत्येक स्वाद को ग्रहण करना चाहिए। किसी भी रस की अति, जैसे अत्यधिक मीठा या अत्यधिक कड़वा या अधिक खट्टा का निरन्तर सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद होता है। आयुर्वेद के अनुसार भोजन की थाली में सभी रसों की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए, कोई भी रस वर्जित नहीं है। पारम्परिक ढङ्ग से तैयार की गयी थाली में दो-तीन प्रकार की सब्जियाँ, दाल, रोटी, चावल, अचार, चटनी इत्यादि सभी सामग्री उपयुक्त मात्रा में परोसी जाती हैं जो शरीर के लिए स्वास्थ्यवर्धक होती है। यदि इन पदार्थों की मात्रा में अति हो जाये तो यह भोजन राजसिक बन जाता है।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः।।17.9।।

तामसिक भोजन के गुणों का वर्णन दसवें श्लोक में है और इस प्रकार का भोजन पूर्णतः त्याज्य है।

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्।17.10।।

4. वस्त्र - हमारे वस्त्रों का चयन स्थान, उद्देश्य, काल, अवसर के औचित्य पर निर्भर करता है। अवसर किसी आयोजन का है अथवा मन्दिर या अन्य धर्म स्थल का, शोक का अवसर है या हर्षोल्लास का, इन सभी विभिन्न परिस्थितियों एवं स्थानों पर उपयुक्त वेशभूषा धारण करनी चाहिए। कई लोग इन उचित निर्देशों का उल्लङ्घन करना चाहते हैं और इन्हें विवाद का विषय बना देते हैं। इस विवादास्पद बुद्धि का मूल तामसिक है। किसी के यहाँ से यदि मृत्यु का अशुभ समाचार मिले तो वहाँ चमक-दमक वाले वस्त्र शोभा नहीं देंगे। मन्दिर जैसे सात्त्विक स्थान पर क्या पहनना उचित रहेगा? सामान्य बुद्धि का प्रयोग कर समझना कठिन नहीं। स्थान, काल, परिस्थिति के अनुसार वस्त्र धारण करने वाला सात्त्विक कहलाता है, जो नहीं कर पाता वह राजसिक कहलाता है। राजसिक वृत्ति वालों में हठ अधिक होती है क्योंकि उनमें किसी भी वस्तु को लेकर आसक्ति अधिक रहती है। वे एक प्रकार के वस्त्र ही हर स्थान पर पहनने की हठ या नियमोल्लङ्घन कर बैठते हैं। तामसिक वृत्ति वाले कपड़ों के

अन्तर को समझ ही नहीं पाते।

5. आवास - मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह सत्य सिद्ध हुआ है कि स्वच्छ स्थान पर कार्य करने से अधिक सफलता मिलती है। इसके ठीक विपरीत ऐसा स्थान जहाँ सब अस्त व्यस्त है, मन को एकाग्र करना कठिन होता है। हमारे शास्त्रों में इसी कारण ध्यान के लिए उत्तम स्थान के चयन की पूरी प्रक्रिया का ज्ञान उपलब्ध है। स्थान पर सही आसन, स्वच्छ वस्त्रों का चयन नितान्त आवश्यक है, नहीं तो ध्यान करते हुए हर प्रकार की गन्ध हमारी नासिका में अनुभव होती है जो ध्यान में बाधक है। ब्रह्मशास्त्रों में विस्तृत वर्णन है कि उस स्थान पर मक्खी, मच्छर न हों, क्योंकि मन को एकाग्र रखना आवश्यक है। परम सिद्ध साधक के लिए ये सब बातें इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं क्योंकि वे हर अवस्था में ध्यान लगा सकते हैं, परन्तु साधारण साधक के ध्यान की अवस्था एक मच्छर के कारण टूट सकती है।

ध्यान कक्ष (meditation hall) भी इसी कारण अत्यन्त साधारण होते हैं, दीवारों पर भी एक-दो सामान्य चित्र लगे होते हैं और शेष परिसर में भी न्यूनतम सजावट रहती है ताकि साधक का ध्यान भटके नहीं। इसी प्रकार सात्त्विक व्यक्तियों का आवास भी अत्यन्त सामान्य होता है, उनके घरों में बहुत सारी वस्तुओं का जमावड़ा भी नहीं होता। राजसिक मनुष्यों का आवास आकर्षक वस्तुओं का केन्द्र बन जाता है, वे अधिक से अधिक आकर्षण की खोज में लगे रहते हैं। तामसिक व्यक्ति का आवास अस्वच्छ, अव्यवस्थित रहता है। इसी कारण शास्त्रकारों ने स्वच्छता पर विशेष आग्रह किया क्योंकि जहाँ स्वच्छता नहीं, वहाँ लक्ष्मीजी का वास नहीं होता। तामसिक वृत्ति वालों के लिए धन, कीर्ति या यश का अर्जन सम्भव नहीं हो पाता।

6. निवेश - हम अपने धन का निवेश किस प्रकार करते हैं यह भी हमारी विवेक बुद्धि पर आश्रित है। सात्त्विक मनुष्य अपने धन को दान-पुण्य, सत्कर्म आदि में उपयोग करते हैं, राजसिक वृत्ति वाले धन को अधिक से अधिक बढ़ाने की चेष्टा में लगे रहते हैं और तामसिक जन उस धन को जुए में गँवा देते हैं।

7. कर्त्तव्य - सात्त्विक मनुष्य अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग होते हैं और प्रत्येक अवस्था में सही ढङ्ग से अपने प्रत्येक कर्त्तव्य का पालन करते हैं। राजसिक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पर कम ध्यान देते हैं परन्तु दूसरा क्या कर रहा है, उसकी तुलना में व्यर्थ समय गँवा देते हैं। तामसिक मनुष्य को यह बोध ही नहीं होता कि किस प्रकार का कर्त्तव्य पालन करना है।

8. स्वभाव - निर्मल, कोमल, दैवी गुणों की सम्पत्ति जिनके पास हैं, वे शनैः-शनैः सात्विकता की ओर बढ़ रहे हैं। ईर्ष्या, अधिक चञ्चलता रखने वाले मनुष्य राजसिक प्रवृत्ति वाले कहलाते हैं। तामसिक स्वभाव वाले व्यक्ति कार्य के प्रति विशेष रूचि नहीं रखते। वे कार्य को आधा-अधूरा छोड़, कल पर टालने की प्रवृत्ति रखते हैं।

9. रूचि - सात्त्विक वृत्ति वाले श्रीमद्भगवद्गीता में रूचि रखते हैं, अपना अधिक से अधिक समय धर्म-कर्म से जुड़े कार्यों में व्यतीत करते हैं। राजसिक व्यक्तियों की रूचि मनोरञ्जन से अधिक जुड़ी रहती है। वे क्लब इत्यादि में समय व्यतीत करना श्रेयस्कर समझते हैं। तामसिक व्यक्तियों को निद्रा से विशेष लगाव होता है। वे सुबह से लेकर रात तक निष्क्रिय ही समय गँवा देते हैं।

10. इच्छा - हम किस प्रकार की वस्तु, पदार्थो के लिए लालायित होते हैं, कहाँ जाने की अथवा क्या करने की इच्छा रखते हैं, यह भी हमारे निहित गुणों पर आधारित हैं।

11. सङ्ग - श्रीरामचरितमानस में कहा गया है -

बिनु सत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।

श्रीराम की कृपा को पाने के लिए विवेक आवश्यक है, परन्तु बिना सत्सङ्ग के विवेक जागृत नहीं हो सकता।

गीता परिवार में बारह हज़ार सेवी अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। उनसे बात करने पर ज्ञात होगा कि वे केवल श्रीमद्भगवद्गीता के उच्चारण को सीखने के लिए नहीं जुड़े, अपितु अनेक सज्जन लोगों से जुड़ने का लाभ भी उन्हें प्राप्त हुआ है। जो भी गीता

परिवार से जुड़ गया, उनके भीतर सात्त्विक प्रवृत्ति के प्रति रुझान है और वे सात्त्विकता के मार्ग पर अग्रसर हैं। एक ही मञ्च पर समान वृत्ति वाले अत्यधिक जन एकत्रित हो गए जो श्रीकृष्ण के भक्त हैं, गीता प्रेमी हैं, शास्त्रों में रूचि रखते हैं और सभी कहीं न कहीं सात्त्विक प्रवृत्ति के हैं, अतः इस एक समूह में ही सत्सङ्ग बड़ी सरलता से उपलब्ध है और यह सङ्ग हमारी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक सिद्ध होगा।

साधारणतः ऐसा मञ्च सुलभता से प्राप्त नहीं होता। गीता परिवार से जुड़ने से पूर्व हमने स्कूल, कॉलेज, ऑफिस में अनुभव किया होगा कि विभिन्न प्रवृत्तियों वाले लोग एक साथ मिलते हैं। यदि हम अपना अधिक समय राजसिक लोगों के मध्य बिताएँगे तो राजसिक गुणों के प्रति आकर्षित होंगे और यदि तामसिक लोगों का साथ चुनेंगें तो उनके साथ अज्ञानता में डूबते जायेंगे।

इन ग्यारह मुख्य बिन्दुओं पर विशेष ध्यान रख हमें अपने जीवन को सात्त्विकता की ओर मोड़ना चाहिए। इन सभी बिन्दुओं पर हमें सत्त्व, रज और तम गुण बाँधेंगे। इस स्थिति में हमारा यह प्रयास रहे कि बँधना है तो सत्त्व गुण का बन्धन ही स्वीकारें।

साधना के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए फिर एक ऐसी स्थिति का आगमन होगा जब वह इन सब गुणों से भी मुक्त हो त्रिगुणातीत हो जाएँगे।

14.8

तमस्त्वज्ञानजं(म्) विद्धि, मोहनं(म्) सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि:(स्), तन्निबध्नाति भारत॥14.8॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! सम्पूर्ण देहधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तुम अज्ञान से उत्पन्न होने वाला समझो। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बाँधता है

विवेचन- तमोगुण हमें प्रमाद, आलस्य और निद्रा से बाँधता है। जब हम अनुभव करें कि इन गुणों का विस्तार हो रहा है, तो समझ जाना चाहिए कि तमोगुण हमें बाँध रहा है।

14.9

सत्त्वं(म्) सुखे सञ्जयति, रजः(ख्) कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः(फ्), प्रमादे सञ्जयत्युत॥14.9॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में (और) रजोगुण कर्म में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है। परन्तु तमोगुण ज्ञान को ढककर एवं प्रमाद में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि सत्त्वगुण हम पर सुख द्वारा विजय प्राप्त करता है एवं रजोगुण हमें कर्मशील बना कर बाँधता है।

रजोगुण इच्छाओं का निर्माण करता है और हम सब उन इच्छाओं से आसक्त हो उन्हें पाने के लिए जुट जाते हैं।

तमोगुण का आवरण अन्धकार का और अज्ञान का होता है। जिस प्रकार सूर्य के आगे बादल का आवरण आ जाये तो सूर्य कुछ क्षणों के लिए लुप्त हो जाता है। यह उदाहरण उन मूढ़ व्यक्तियों की दशा समझाता है जो सत्य और असत्य का भेद नहीं कर पाते। आकाश में सूर्य सदा विद्यमान है और हमारे चक्षु उसे देख भी पाते हैं परन्तु अज्ञानता के आवरण में बँध कर सही और गलत में भेद नहीं जान पाते। तमोगुणी व्यक्ति में प्रमाद और आलस्य बढ़ता जाता है और इस प्रकार तमोगुण व्यक्ति पर विजय प्राप्त करता है। कई साधक इससे बचने के लिए लोगों के मध्य रहना पसन्द करते हैं क्योंकि एकान्त में रहने से हम और अधिक आलसी हो जाते हैं और किसी कार्य में हमारा मन नहीं लगता।

साधना के मार्ग पर अग्रसर साधक के जीवन में ऐसा अवसर भी आएगा जब एकान्त में परम आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

एकान्ते सुखमास्यताम्।

14.10

रजस्तमश्चाभिभूय, सत्त्वं(म्) भवति भारत।
रजः(स्) सत्त्वं(न्) तमश्चैव, तमः(स्) सत्त्वं(म्) रजस्तथा॥14.10॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्व गुण बढ़ता है, सत्त्व गुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण (बढ़ता है) वैसे ही सत्त्वगुण (और) रजोगुण को दबाकर तमोगुण (बढ़ता है)।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि हम सदैव तीनों गुणों से बँधे हैं, ये तीनों गुण हर अवस्था में, हर काल में मनुष्य में विद्यमान रहते हैं, तब कोई एक गुण कैसे विजय प्राप्त करता है? श्रीभगवान इस श्लोक में उस रहस्य पर प्रकाश डालते हैं-

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः

रजस और तमस गुण को अभिभूय अर्थात् दबाकर सत्त्व विजय प्राप्त करता है। हमारे अन्तः करण में जिस गुण की प्रधानता होगी, हमारे मन की प्रवृत्तियाँ भी उसी ओर होंगी। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सात्त्विक गुण प्रधान बन जाता है और वह व्यक्ति सात्त्विक प्रक्रियाएँ करने लगता है। सत्त्वगुण बढ़ाने से उसका फलदायक परिणाम प्राप्त होता है।

उसी प्रकार रजोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर तमोगुण उभर आता है और कभी तमोगुण और सत्त्वगुण को दबा रजोगुण प्रबल हो जाता है।

अब हमें यह चेष्टा करनी चाहिए कि प्रातः काल से रात्रि तक किस गुण की प्रधानता बढ़ती जाये और हमारे कार्य भी उसी दिशा की और अग्रसर रहें। हम क्या करते हैं? उससे हमारे गुण सही भाँपे नहीं जाते अपितु किस मनः स्थिति से कर रहे हैं, वह हमारे गुणों को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, यदि ईश्वर की पूजा सच्चे श्रद्धा भाव और प्रेम से कर रहे हैं तो सत्त्वगुण का विस्तार होता है, पर यदि हम श्रीभगवान की पूजा जल्दी-जल्दी निपटा रहे हैं, श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोकों का उच्चारण जल्दबाज़ी में करते हैं, माला को तेज़ी से फेर रहे हैं तब हम रजोगुण को निमन्त्रण दे रहे हैं। ऐसा करने पर कई लोगों को दिन भर अपने अन्दर एक विचित्र सी हलचल का अनुभव होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि रजोगुण बढ़ जाने से अशान्ति में भी वृद्धि हो जाती है।

यदि हमने पूजा विधि पूर्वक नहीं की, मन्त्रजाप भी आधा अधूरा किया, तब हमें अवाञ्छित भय सताने लगता है, कि श्रीभगवान हमें पाप तो नहीं देंगे। श्रीभगवान ऐसा कुछ नहीं करते, हम स्वयं ही अपनी मुक्ति या अधोगति का मार्ग सुनिश्चित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमने, आठ श्लोकों मे केवल चार का उच्चारण सीखा और शेष अपने आलस्य के कारण छोड़ दिया तो ऐसा करने से हमारा ही तमोगुण बढ़ता जाता है और फिर उसका फल हमें भोगना पड़ता है। कई लोगों को ऐसा करने पर पूरा दिन व्याकुलता अनुभव होती है। श्रीभगवान तो दया निधान हैं, वे किसी भी व्यक्ति को पाप नहीं देते, परन्तु मनुष्य अपने कर्म फल को भोगने के लिए बाध्य है।

14.11

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्, प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं(म्) यदा तदा विद्याद्, विवृद्धं(म्) सत्त्वमित्युत॥14.11॥

जब इस मनुष्यशरीर में सब द्वारों (इन्द्रियों और अन्तःकरण) में प्रकाश (स्वच्छता) और ज्ञान (विवेक) प्रकट हो जाता है, तब जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है।

विवेचन- श्रीभगवान स्वयं के निरिक्षण के लिए अलौकिक ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। वे हमें आत्म निरीक्षण की विधि समझाते हैं जिसके द्वारा हम जान सकें कि हमारे अन्दर किस गुण की मात्रा सर्वोपरि है- सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण।

सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर जीवन में समय-समय पर अनेक सुखकारी प्रसङ्ग अनुभव होते हैं। हमने कई बार ऐसा अनुभव किया होगा कि निष्कारण ही मन में असीम प्रसन्नता का अनुभव होता हैं, मन एकदम शान्त होता है और उसमें कोई संशय, विषाद नहीं रहता, सम्पूर्ण दिवस बड़ी सहजता से एक सुखद अनुभूति के साथ सम्पन्न हो जाता है। ऐसा अनुभव सत्त्वगुण की वृद्धि से प्राप्त होता है। इस श्लोक में प्रकाश का तात्पर्य ज्ञान से है, ज्ञान के प्रकाश में सभी संशय समाप्त हो जाते हैं और हम स्वयं के लिए उचित, अनुचित का सही निर्णय ले पाते हैं। सत्त्व गुण की राह पर चलते हुए, ज्ञान की वृद्धि का मार्ग स्वतः ही अनावृत हो जाता है। हम में से कईयों ने यह भी अनुभव किया होगा कि कई बार कुछ सोच विचार करते हुए एकाएक ही कोई उत्तम विचार मन में उजागर होता है। सत्त्वगुण के ओजस के कारण ही यह सब सम्भव हो पाता है।

स्वामी रामसुखदास जी कहते हैं कि यदि हमें ऐसा लगने लगे कि अब हमारा मन गीता जी में लग रहा है, ईश्वर की भक्ति में भी स्थिर है, स्वाध्याय के लिए भी प्रेरित हो रहा है, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने, पढ़ाने की जिज्ञासा तीव्र होती जा रही है तो ऐसे सुखदायी अनुभव पर अहङ्कार को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए, अपितु हमें स्वयं को अच्छे-अच्छे कार्यों में और अधिक व्यस्त कर लेना चाहिए ताकि वह भटक ही न पाये।

क्रिया को गीता जी में कभी राजसिक नहीं बोला है, किस भाव से और किस उद्देश्य से कर रहे हैं? उसी को प्रधानता दी है।

दूसरे अध्याय में श्रीभगवान ने कहा-

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं।

बारहवें अध्याय में श्रीभगवान ने पुनः कहा-

सर्वकर्मफलत्यागं(न्)
कर्म का त्याग करना नहीं सिखलाया, कर्म के फल का त्याग करने को प्रेरित कर रहे हैं।

श्रीभगवान सतोगुणी कर्म करने के लिए ज्ञान दे रहे हैं, बिना फल की आकाङ्क्षा के।
अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।

ऐसा करने से ज्ञान की वृद्धि होगी, कलुष दूर होंगे, मन के विकारों का नाश होगा, इन सबके साथ राग-द्वेष का भी विनाश होगा एवं मनुष्य अध्यात्म के उच्च पद पर निरन्तर बढ़ता रहेगा।

14.12

लोभः(फ्) प्रवृत्तिरारम्भः(ख्), कर्मणामशमः(स्) स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे भरतर्षभ॥14.12॥

हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, अशान्ति और स्पृहा -- ये वृत्तियाँ पैदा होती हैं।

विवेचन- रजोगुण की वृद्धि होने पर मनुष्य में लोभ, प्रवृत्ति, कर्मों का आरम्भ, अशान्ति और स्पृहा पैदा होती हैं।

लोभ से यहाँ तात्पर्य है कि जिस वस्तु, पदार्थ की हमारे पास पर्याप्त मात्रा है, उसको और अधिक चाहना। धन राशि के

उदाहरण से समझें तो पचास हज़ार प्राप्त होने पर एक लाख की लालसा, एक लाख होने पर डेढ़ लाख की और इसी तरह उसका विस्तार। एक अन्तर समझना आवश्यक है कि, किसी व्यापारी को यदि किसी व्यापार सन्धि में अनपेक्षित लाभ हो जाये तो वह लोभ नहीं है। लोभ की श्रेणी में वही फल गिना जायेगा जिसके लिए भरसक प्रयत्न भी किया गया हो।

प्रवृत्ति से तात्पर्य है क्रिया या कार्य। किसी वस्तु को जब हम चाहते हैं तो उसे पाने के लिए की गयी क्रिया, प्रवृत्ति कहलाती है।

चिन्मयानन्द जी इसको लोभ, प्रवृत्ति, आरम्भ, एक अनुक्रम में कहते हैं। पहले किसी वस्तु विशेष के प्रति लोभ उजागर होता है, फिर उसको प्राप्त करने के लिए प्रवृत्ति या क्रिया आरम्भ होती है।

इस श्लोक के अनुक्रम से श्रीभगवान की दार्शनिकता का प्रमाण मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीता का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि श्रीकृष्ण कितने महान राजनीतिज्ञ थे। कितने ही स्थानों पर चमत्कारिक बातों को श्रीभगवान ने इतनी सुन्दरता से गूँथा है।

आरम्भ का अर्थ है नवीन उपक्रमों का स्वयं के हित के लिए, सांसारिक सुख के लिए, धन के लिए, यश के लिए, नवीन प्रकल्पों के लिए प्रयोग करना।

गीता जी में परहित के लिए कोई कार्य वर्जित नहीं पर जो कार्य स्वयं की प्रतिष्ठा, वृद्धि के लिए किया जाये, जिसकी आवश्यकता भी नहीं है, वह वर्जित है।

बारहवें अध्याय में भी श्रीभगवान् ने कहा-

सर्वारम्भपरित्यागी।

कर्मणामशमः स्पृहा - अशमः अशान्ति की स्थिति है। राजसिक प्रवृत्ति वालों को कई बार अनुभव होता है कि मन में शान्ति नहीं है, हलचल बनी रहती है, मन उद्विग्न हो उठता है। ऐसी परिस्थिति रजोगुण के कारण ही है। कोई लालसा जो पूर्ण नहीं हो पा रही, ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है।

स्पृहा का अर्थ है - अपने लिये चिन्तित रहना, भविष्य को लेकर अवाञ्छनीय भय, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अनावश्यक सोच।

संन्यासी के गुणों के उल्लेख में कहा जाता है कि उसे अपने लिए अधिक चिन्ता नहीं होती। यदि एक पहर का भोजन प्राप्त हो गया तो अगले पहर के भोजन की व्यवस्था उसे सताती नहीं है। उसका मन तो केवल ब्रह्म चिन्तन में ही समर्पित रहता है ।

गृहस्थजीवन में स्वयं के चिन्तन के लिए अनुमति है और उपयुक्त भी है, परन्तु अत्यधिक चिन्ता स्पृहा कहलाती है, वह वर्जित है। आज से पाँच-दस साल बाद क्या होने वाला है? की चिन्ता आवश्यक नहीं।

इसी कारण श्रीकृष्ण से जब अर्जुन ने संन्यास लेने की बात कही तो श्रीभगवान ने कहा -

कर्मयोगो विशिष्यते।

एक संन्यासी की भाँति जब तक हमारी मनःस्थिति नहीं बन जाती, तब तक संन्यास की और प्रवृत्त होने से फलदायी परिणाम नहीं प्राप्त होंगे। हमसे वहाँ पाप कर्म या अनुचित कार्य ही होंगे, क्योंकि मन तो अभी तक विषयों में ही अटका है, इसलिए श्रीभगवान ने कर्मयोग को ही विशिष्ट बताया है और फिर धीरे-धीरे लोभ प्रवृत्ति, स्पृहा का नाश करते हुए संन्यास की ओर मुख करना चाहिए।

14.13

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च, प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे कुरुनन्दन॥14.13॥

हे कुरुनन्दन! तमोगुण के बढ़ने पर अप्रकाश, अप्रवृत्ति तथा प्रमाद और मोह – ये वृत्तियाँ भी पैदा होती हैं।

विवेचन- जीवन में तमोगुण की वृद्धि होने पर **अप्रकाश** अर्थात् अन्धकार छा जाता है, उचित-अनुचित का भेद नहीं समझ आता।

अप्रवृत्ति - कुछ न करने की वृत्ति, केवल निष्क्रियता की भावना, कुछ भोजन मिल जाये, उसके लिए कुछ करना न पड़े। ये प्रमाद के लक्षण हैं।

प्रमाद - जो करना चाहिए वह न कर, जो नहीं करना चाहिए वह कर देना। उदाहरण के लिए प्रातः काल के समय व्यायाम, पूजा, अध्ययन, स्वाध्याय करना चाहिए, परन्तु यदि हम सो रहे हैं तो वह प्रमाद हो गया।

हमारे ग्रन्थों में इसी कारण ब्रह्म मुहूर्त में उठने की विधि है। यदि ब्रह्म मुहूर्त में नहीं उठे तो पाँच-छह बजे उठना चाहिए, क्योंकि उस काल का एक निर्धारित तापमान, जलवायु होती है, सुनिश्चित वातावरण होता है। आयुर्वेद में हर काल की विशेष महत्ता है और हमें उस का पालन करना चाहिये। ऐसा करने से शरीर और मन को कई लाभ प्राप्त होते हैं। शरीर आरोग्य होता है, जीवन में सफलता प्राप्त होती है, मन से अनपेक्षित चिन्ताएँ दूर होती हैं, मन प्रसन्नचित्त रहता है।

प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाने से कई अहितकारी परिणाम सामने आते हैं। स्वास्थ्य घटता जाता है, मनोदशा विचलित रहती है।
असमय कार्य तमोगुणी व्यक्ति की पहचान है।

मोह - सत्य को देख न पाना। धृतराष्ट्र के मोह के कारण महाभारत का युद्ध हुआ। यदि वे दुर्योधन को बाल्यकाल से पाण्डव पुत्रों के प्रति प्रेम, सम्मान का भाव जागृत कराते तो शायद दोनों कुलों में इतना द्वेष न होता और युद्ध की स्थिति न उत्पन्न होती। दुर्योधन से अधिक मोह के कारण उसके अनुचित कार्यों को भी बढ़ावा दिया गया, उसे गलत काम करने पर रोका नहीं गया, सत्य को न पहचानने के कारण कौरवों की अवनति हुई।

अर्जुन को भी आरम्भ में अपने प्रियजनों से मोह के कारण युद्ध करने में सङ्कोच हो रहा था। श्रीभगवान ने स्वयं उन्हें ग्यारहवें अध्याय में सत्य का बोध कराया कि उनके स्वजनों की हत्या तो पहले ही हो चुकी है, काल द्वारा सब सुनिश्चित है, उन्हें केवल निमित्त मात्र बनना है।

श्रीभगवान ने दो-तीन विधियों से अर्जुन को सत्य के दर्शन करवाए। जिस मोह के कारण अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहते थे, अट्ठारहवें अध्याय के तिहत्तरवें श्लोक में कहा-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

मेरा मोह नष्ट हो गया, जो सत्य मैं देख नहीं पा रहा था, मेरा वह अज्ञान दूर हो गया।

रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि होने पर क्या-क्या लक्षण उभरते हैं? उन्हें पहचान कर, उनके अनुसार व्यक्ति अपना उचित कर्म कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि हमें समझ आ जाये कि किस समय हमारे अन्दर रजोगुण की वृद्धि के कारण उद्वेग उत्पन्न हो रहा है, तो क्या करने से रजोगुण को न्यून करके सत्त्वगुण को बढ़ाया जा सकता है? ऐसे स्वयं को पहचानने से व्यक्ति में विवेक जागृत हो जाता है और वह अपने कर्मों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है। आरम्भ से ही यदि ऐसी शिक्षा प्राप्त हो

जाये तो कोई भी अनुचित वृत्ति विशालकाय रूप धारण नहीं करती।

बच्चों के लिए एक परीक्षा की जाती है - एक छोटा सा पौधा दो अङ्गुली के बल से मिट्टी से निकाला जा सकता है, वही पेड़ जब बड़ा हो जाये तो दोनों हाथ लगाने पड़ते हैं और वही अगर वट वृक्ष बन गया तो उसे आरी से काटना पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार, यदि रजोगुण को बाल्य काल से ही नियन्त्रण में रखने का प्रयास करें तो सम्भवतः उसमें सफलता प्राप्त हो सकती है। पर वह युवावस्था तक वट वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं और हम चाह कर भी अपनी बुरी आदतें जैसे निन्दा करना, अधिक बोलना, रात्रि को जागना, प्रातः सोना, इनसे छुटकारा नहीं पा सकते।

चौदहवें अध्याय में श्रीभगवान इन्हीं आदतों को पहचानने की सीख दे रहे हैं ताकि हम अपने व्यसनों पर तत्पर विजय प्राप्त कर अपना कल्याण कर पाएँ।

इस अनमोल सीख के साथ आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र-

प्रश्नकर्ता- डी. पी. पाण्डे भैया
प्रश्न- श्रीभगवान ने अर्जुन से कहा कि सभी मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तुम निमित्त मात्र बन जाओ। यह समझ नहीं आया, कृपया समझाइये।
उत्तर- श्रीभगवान के लिए काल नगण्य है। काल के द्वारा सभी का नाश निश्चित है। अतः श्रीभगवान ने बताया कि किसी के भी मारे जाने का दुःख मत करना। इनकी मृत्यु निश्चित है, चाहे वो किसी के द्वारा भी हो, तो तुम्हें तो मात्र निमित्त ही बनना है।

प्रश्नकर्ता- रेखा दीदी
प्रश्न- क्रोध पर नियन्त्रण कैसे करें?
उत्तर- जब क्रोध आए तो गीता जी के श्लोकों का उल्टे क्रम में उच्चारण प्रारम्भ कर दें। जिससे गीता जी की सात्त्विकता का प्रभाव पड़ने के साथ -साथ आपका ध्यान भी क्रोध की ओर से हट जाएगा।

प्रश्नकर्ता- विनय भैया
प्रश्न- कई बार काम करने में मन नहीं लगता है और हमारे कार्य अधूरे छूट जाते हैं? इसका समाधान कैसे करें?
उत्तर- ऐसा प्रायः सभी के साथ होता है। इसके लिए हमें सर्वप्रथम अपनी दिनचर्या को ठीक करना चाहिए। सभी कार्यों के लिए समय निर्धारित करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता- विनय भैया
प्रश्न- स्वयं को नकारात्मक विचारों से दूर कैसे रखें?
उत्तर- इसके लिए भी आपको सर्वप्रथम अपनी दिनचर्या को ठीक करना चाहिए और स्वयं को अत्यधिक व्यस्त कर लेना चाहिए। यदि आपको कभी विश्राम भी करना है तो आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि यह विश्राम का समय है। इसके अतिरिक्त आपको सामाजिक रूप से भी जुड़ना चाहिए तथा स्वयं को किसी भी प्रकार की कला से जोड़ना चाहिए। कला के समावेश से जीवन में नकारात्मक भावों का आगमन नहीं हो पाता है और उनका स्थान सकारात्मक विचार ले लेते हैं।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||